भारविकृत किरातार्जुनीयम् का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन

–नागरानी देवी एवं डॉ. सीमा सिंह*
शोधच्छात्रा : संस्कृत, वी.ब. सिंह पूर्वांचल वि.वि. जौनपुर (उ.प्र.)
*असि. प्रोफे. एवं विभागाध्यक्ष : संस्कृत
राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ.प्र.)

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास की कृतियों के अनन्तर भारवि के 'किरातार्जुनीय' का ही स्थान है। महाकाव्य की दृष्टि से आलोचकों ने 'रघुवंश' को लघुत्रयी' में रखा है तथा 'किरातार्जुनीय' को बृहत्त्रयी में। यद्यपि सर्ग आदि की दृष्टि से रघुवंश काव्य किरातार्जुनीय से लघुकाय नहीं है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि काव्यकला के शिल्प विधान की दृष्टि से किरातार्जुनीय, रघुवंश महाकाव्य से उत्कृष्ट तथा ओजपूर्ण है। लोकप्रियता की दृष्टि से मेघदूत तथा कुमारसंभव के बाद किरातार्जुनीय का ही स्थान है। मनोहर अर्थगौरव से विभूषित, छोटे–छोटे समस्त पदों की सुललित कर्णप्रिय ध्वनि से गूँजते हुए सैकड़ों श्लोक अथवा श्लोकार्ध संस्कृत–प्रेमी समाज के कण्ठहार बने हुए हैं।

काव्यप्रेमी पंडितों की तुलनात्मक सम्मति इस प्रकार है–

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः।।
तावद् भाः भारवेः भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।।

अर्थात्–उपमा में कालिदास, अर्थगौरव में भारवि, पद लालित्य में दण्डी तथा इन तीनों दृष्टियों से माघ श्रेष्ठ कवि हैं।

भारवि की कान्ति उसी समय तक है जब तक माघ का उदय नहीं होता। किन्तु नैषध काव्य का उदय होने पर कहाँ माघ रहता है और कहाँ ?

वस्तुतः इन समीक्षाओं में पाण्डित्य प्रदर्शन को आधार बनाया गया है। जब कविता में भाव प्रवणता को गौण मानकर कलापक्ष–अलप्रार पक्ष या पाण्डित्य–प्रदर्शन को मानक बनाया जायेगा तब ऐसी ही समीक्षाएँ सामने आयेंगी।

वस्तुतः माघ में काव्य रसास्वादन की सहृदयता कालिदास एवं भारवि के महाकाव्यों की अपेक्षा निर्बल है। क्योंकि कालिदास की मनोहारिणी उपमाओं एवं भारवि की अर्थगौरव से भरी ललित पदावली का दर्शन माघ की रचना शिशुपालवध में बहुत कम मिलता है। यह अवश्य है कि असाधारण काव्यशिल्प विधान माघ में विद्यमान है, उनके शिशुपालवध में असाधारण वैदुष्य की छटा भी विराजमान है, जिसके कारण कोई भी पण्डितमानी उन्हें सर्वश्रेष्ठ मानने से रुक नहीं सकता। किन्तु यह भी सत्य है कि कविताकामिनीकान्त कालिदास की निसर्ग मनोहारिणी उपमायें तथा स्वल्प सुललित शब्दों में विपुल अर्थ–गाम्भीर्य से पूर्ण एवं काव्य–कला–माधुरी से विमण्डित महाकवि भारवि की रचना–चातुरी की छटा सचमुच माघ की रचना में दुर्लभ है।

विशद एवं महान् अर्थ को प्रदर्शित करने वाली, सुरसता को धारण करने वाली, सत्पथावलम्बन की दीपिका भारवि की निसर्ग इस रम्या कृति को यदि दूसरे कविगण उपजीव्य

बनाते हैं, तो इसमें आश्चर्य की बात क्या है? स्वयं महाकवि माघ ने भी भारवि की न केवल कथा–पद्धति एवं रचना–शैली को ही अपना आदर्श अथवा उपजीव्य बनाया है, अपितु 'शिशुपालवध' की अधिकांश सामग्री 'किरातार्जुनीय' को सामने रखकर प्रणीत की गयी ज्ञात होती है। जैसा कि भारवि कहते हैं–सहज प्रसादगुण–पूर्ण एवं गम्भीर अर्थों से युक्त पदों से समलंकृत वाणी सुन्दर पत्नी की भाँति यथेष्ट पुण्य न करने वाले को प्राप्त नहीं होती (14/3)। किरातार्जुनीय में उनकी यह उक्ति पदे–पदे चरितार्थ होती है। किरात के पदों में दीर्घ समासान्त कर्कश पदावली नहीं आने पायी है। भारवि के श्रुतिमधुर, बहुप्रसिद्ध, संगीतात्मक ध्वनि से गुम्फित शब्द ही पाठकों एवं श्रोताओं के अन्तस्तल में पैठते हैं। पदों में प्रायः समास छोटे तथा सीधे सादे हैं। माघ की भाँति व्याकरण के सूत्रों की शरण लेकर अनेकार्थक संस्कृत की प्रसिद्ध धातुओं का प्रयोग अथवा अप्रचलित कठिन कृदन्त एवं तद्धितान्त पदों का प्रयोग भारवि ने प्रायः प्रयत्नपूर्वक वर्जित रखा है। शब्दों के आडम्बर में पड़कर अर्थ के गौरव को क्षीण करना भारवि को कथमपि सह्य नहीं था। कविता के प्रति लोक–रुचि को यथार्थ रूप में जानने वाले भारवि अपना काव्यादर्श इस प्रकार प्रकट करते हैं–

स्तुवन्ति गुवर्मीभिधेयसम्पदं
विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः।
इति स्थितायां प्रतिपूरूषं रुचौ
सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः।।[1]

"कुछ लोग अर्थसम्पत्ति की प्रशंसा करते हैं और कुछ केवल शब्दों की छटा को बखानते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य में भिन्न–भिन्न रुचि रहने के कारण ऐसी वाणी ;कविताद्ध बहुत ही दुर्लभ है, जो सबको एक समान मनोहारिणी मालूम पड़ती हो अथवा जो अर्थगौरव एवं शब्द सौन्दर्य दोनों ही से समलंकृत हो।" भारवि की वाणी सचमुच इन दोनों ही सद्गुणों से समलंकृत है। भारवि ने काव्य में भावपक्ष के साथ–साथ कलापक्ष के महत्त्व को भी बढ़ाया। पाण्डित्य–प्रदर्शन का प्रारम्भ तो भारवि ने ही किया। किन्तु यह पाण्डित्य प्रदर्शन तथा कलापक्ष की प्रबलता माघ और श्रीहर्ष के काव्यों में तीव्रतर हो गयी तथा पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। भारवि के बाद काव्यों में शाब्दिक क्रीड़ाओं, आलंकारिक चमत्कारों, अनेकार्थक शब्दों के प्रयोगों, लम्बे–लम्बे वर्णनों के द्वारा पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ती ही गयी। महाकवि हर्ष में तो यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि वे गर्वपूर्वक घोषणा करते हैं कि "उन्होंने अपने काव्यों में प्रयत्नपूर्वक ग्रंथियों को निहित किया है। अपने आपको बुद्धिमान् समझने वाले खल इनसे न खेलें।"

ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपिन्यस्ता प्रयत्नान्मया।
प्राज्ञं मन्यमनाः हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय
स्त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं पण्डितः।।[2]

इस पाण्डित्य–प्रदर्शन के युग में "उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः" जैसी समीक्षाएँ ही होनी थी।

किरातार्जुनीय का महाकाव्यत्व– उक्त लक्षणों के अनुसार भारवि का 'किरातार्जुनीयम्' एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें 18 सर्ग हैं। धीरोदात्त कुलीन क्षत्रिय अर्जुन इसके नायक हैं। इस काव्य का प्रधान रस 'वीर' है। शृंगार आदि रस गौण हैं और अंगी रस (प्रधान रस) 'वीर' के

पोषक हैं। नाट्यशास्त्रीय नियमानुकूल मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा उपसंहृति (निर्वहण) का उचित संयोजन और निर्वाह किया गया है। इसका कथानक प्रसिद्ध और ऐतिहासिक है। इस काव्य का उपजीव्य प्रसिद्ध 'महाभारत' नामक आर्ष महाकाव्य है। चतुर्वर्ग–धर्म– अर्थ–काम–मोक्ष में से अर्थ अर्थात् राज्य की प्राप्ति के लिए अस्त्रों की उपलब्धि फल है। काव्य का प्रारम्भ मंगलबोधक 'श्री' से किया गया है, जो लक्ष्मी का बोधक है। सर्गान्त में भी 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग है। सर्गादि में सर्ग की कथा का संकेत है। सर्गों की संख्या 18 है। यह न ज्यादा है न कम। 5वें तथा 18वें सर्ग में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा का संकेत है। इस काव्य में प्रसंगतः ऋतु, पर्वत, सूर्योदय, सूर्यास्त, नदी, जलक्रीड़ा, रतिलीला आदि का वर्णन है। मुनि व्यास का द्वितीय सर्ग में आगमन हुआ है। किरात और अर्जुन के अद्भुत युद्ध का वर्णन है। महाकाव्य का नाम प्रतिनायक और नायक ;किरात और अर्जुनद्ध के नाम पर 'किरातार्जुनीयम्' रखा गया है। इन सभी विवरणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि 'किरातार्जुनीयम्' एक श्रेष्ठ तथा सर्वांगपूर्ण महाकाव्य है।

इन काव्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुरूप 'किरातार्जुनीयम्' की सफल प्रस्तुति निश्चयेन इसे एक गौरवपूर्ण महाकाव्य की गरिमा प्रदान करती है। पुनरपि कुछ अन्य विशेषताएँ भी इस काव्य की हैं, जिसके कारण महाकाव्य ने एक दिशा देने का कार्य भी किया है। भारवि–पूर्व महाकाव्यों की कथा धारा विभिन्न प्रकार के प्रचुर वर्णनों के बावजूद मन्थर गति से अविच्छिन्न प्रवाहित होती थी। किन्तु भारवि द्वारा छोटे कथानक को बड़े महाकाव्य के रूप में फैला देने से कथा–अंश न्यून हो गया और उसकी पूर्त्ति वर्णनों की प्रचुरता में करनी पड़ी। इससे कथा में अवरोध उत्पन्न हुआ और वर्णनाधिक्य से पुनरावृत्ति दोष भी आया। यह प्रवृत्ति भारवि के उत्तरवर्ती, भट्टि, माघ तथा श्री हर्ष के काव्यों में भी पायी जाती है। कथा–प्रवाह का अवरोध प्रभावोत्पादकता में न्यूनता लाता है, जो कालिदास की रचनाओं में नहीं है।

भारवि–पूर्व कालिदास की रचनाओं में कवि की विनयशीलता पाठकों के हृदय पर अद्भुत प्रभाव डालती है। (कहाँ महान् सूर्यवंश और कहाँ मेरी तुच्छ मतिंगक्वसूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्प विषयाः मतिः।) परन्तु भारवि तथा माघ के काव्य में ऐसी विनयशीलता का कहीं कोई लवलेश नहीं है, अपितु हर्ष और पण्डितराज जगन्नाथ अपने काव्य की उत्कृष्टता तथा पाण्डित्यपूर्ण चातुरी का साभिमान डिण्डिम घोष करते हैं।

भारविपूर्व काव्यों में काव्य की सफलता के लिए ईश्वरवन्दना की परम्परा थी। रघुवंश में महाकवि कालिदास शिव और पार्वती की वन्दना करते हैं। 'कुमारसंभव' में देवरूप देवतात्मा 'हिमालय' की अनेक पद्यों में वन्दना की गयी है। 'भारवि' सीधे विषयवस्तु को लेकर काव्य का प्रारम्भ कर देते हैं। विश्वनाथ या दण्डी जो महाकाव्य लक्षणों में–'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' कहते हैं (महाकाव्य का आरम्भ आशीर्वाद और नमस्कार के अतिरिक्त कथावस्तु का निर्देश करके भी किया जा सकता है) तब निश्चय ही यह प्रतीत होता है कि उन्होंने भारवि के काव्य को दृष्टिगत रखकर ही यह लक्षण बनाया है। भारवि का 'वस्तु निर्देश' पूर्वक काव्य प्रारम्भ का प्रभाव माघादि कवियों पर भी पड़ा। माघ का काव्य भी 'श्री' शब्द से प्रारम्भ होता है। 'नैषध' में श्री हर्ष राजा नल के कीर्तन से काव्य का आरम्भ करते हैं।

'किरातार्जुनीयम्' में परिपुष्ट 'रस' 'प्रकृति वर्णन' तथा 'अलंकार' का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

रस–प्रधानरूप से महाकाव्यों में शृंगार तथा वीर रस प्रमुख माने जाते हैं। लक्षण ग्रंथों में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है–"एक एव भवेद् अंगी शृंगारो वीर एव वा।" इसी आधार पर महाकवि भारवि ने अपने महाकाव्य में वीर–रस को प्रधानता दी है। किरात में शृंगार–रस प्रधान न होकर गौणरूप में ही है "शृंगारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः"। 'मल्लिनाथ' ने किरात को रस का समुद्र कहा है। 'कृष्णकवि' ने इस महाकाव्य को अर्थगौरव से पूर्ण तथा रस पेशलता से अभिव्याप्त कहा है–

प्रदेशवृत्त्याऽपि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना।
सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्याकृतिः कैरिव नोपजीव्या।।

'शारदातनय' के अनुसार भारवि की वाणी में भाव तथा रस दोनों का पूर्ण तादात्म्य पाया जाता है–

"तादात्म्यं भावरसयोः भारविः स्पष्टमुक्तवान्।"

निःसन्देह कोई भी कवि अर्थगौरव तथा रसात्मकता दोनों का परिपालन कठिनाई से ही कर पाता है। प्रायः एक के प्रधान होने पर दूसरा गुण तिरोहित होने लगता है।

वीर–वस्तुतः किरात एक वीर–रस प्रधान काव्य है। प्रथम सर्ग से ही द्रौपदी की वीर–रस प्रधान कटूक्तियों के ज्वार–भाटे तथा आगे चलकर भीम की ओजपूर्ण उक्तियों का अंधड़ दिखायी देने लगता है। उपसंहार में भी अर्जुन के युद्ध की झलक दिखायी देखती है। भीम प्रारम्भ में ही युधिष्ठिर को पराजय की आशंका से दूर करने का प्रयत्न करता हुआ कहता है–

द्विरदानिव दिग्विभावितांश्चतुरस्तोयनिधीनिवायतः।
प्रसहेत रणे तवानुजान् द्विषतां कः शतमन्युतेजसः।।[3]

"चारों दिशाओं में विख्यात इन्द्र के समान आपके चारों भाइयों के पराक्रम को सहन करने में कौन समर्थ है?" वीर–रस की भावव्यंजना में भीम कहता है कि "सिंह अपने हाथों से मारे गये मद से अवलिप्त हाथियों का मांस भक्षण करता है, वह किसी की कृपा पर जीवित नहीं रहता। मुझे भी दूसरों से भीख माँग कर नहीं, स्वयं अपने पराक्रम से राजलक्ष्मी हस्तगत करनी है, क्योंकि यह सुनिश्चित सिद्धान्त है कि अपने तेज से संसार को तुच्छ बनाने वाला व्यक्ति किसी दूसरे की कृपा पर ऐश्वर्य प्राप्त नहीं करता"–

मदसिक्तमुखैः मृगाधिपः करिभिर्वर्त्तयते स्वयंहतैः।
लघयन् खल तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः।।[4]

किरात वेशधारी शिव से अर्जुन के युद्ध पर कवि वीर–रस का प्रयोग कितनी अर्थप्रवण एवं सारगर्भित वाणी से करता है–अर्जुन शंकर जी के वाणों की नदी को चीरकर उसी प्रकार आगे आ गया जैसे गंगा के प्रवाह को चीरकर घड़ियाल ऊपर आ जाता है। तत्पश्चात् शिव के कठोर वक्ष पर अपनी भुजाओं से प्रहार करता है।

गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्यामाजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः।।[5]

शृंगार– वीर–रस प्रधान होने पर भी कवि ने शृंगार के वर्णन में भी अपनी पूर्ण दक्षता प्रस्तुत की है। किरात में 8 वें सर्ग से 10 वें सर्ग तक देवाङ्गनाओं के सौन्दर्य एवं शृंगार का छलकता हुआ वर्णन कवि ने किया है। अनेक आलोचकों ने भारवि के शृंगार को कामुक–वृत्ति से ओत–प्रोत माना है। यदि आलोचकों की इस आलोचना को कवि के विषय में स्वीकार किया

जाय, तो उक्त दोष से कालिदास जैसा सहृदय कवि भी नहीं बच सकता। शृंगार में कामुकता तो संचारीभाव के रूप में रहती ही है।

लोलद्दष्टिवदनं दयितायाश्चुम्बति प्रियतमे रभसेन।
व्रीडया सह विनीवि नितम्बादंशुकं शिथिलतामुपपेदे।।[6]

प्रियतम द्वारा चंचलदृष्टि वाली प्रियतमा के मुख का बलपूर्वक चुम्बन करते समय प्रियतमा के नीवी के बन्धन खुल जाने से लज्जा के साथ–साथ अधोवस्त्र भी नितम्बों से खिसक गये।

शान्त– महाकवि भारवि की प्रतिभा की यह विशेषता है कि जब कवि वर्ण्य विषय की विवेचना करने लगता है तो वह मूर्तिमान्–सा प्रतीत होने लगता है। महर्षि वेदव्यास बिजली से युक्त मेघ की भाँति श्यामल शरीर पर पीत जटाओं को धारण करने वाले शान्त मुनि के रूप में उपस्थित हैं–

ततः शरच्चन्द्रकराभिरामैरुत्सर्पिभिः प्रांशुमिवांशुजालैः।
विभ्राणमानीलरुचं पिशङ्गीर्जटास्तडित्वन्तमिवाम्बुवाहम्।।[7]

मुनि वेशधारी इन्द्र का वर्णन कितना स्वाभाविक प्रतीत होता है, मानो कोई मुनि साकार रूप में खड़ा हुआ है।

जटानां कीर्णया केशैः संहत्या परितः सितैः।
पृक्तयेन्दुकरैरीः पर्यन्त इव सन्ध्यया।।[8]

प्रकृतिवर्णन– लक्षण ग्रन्थों में प्रकृति वर्णन आवश्यक बताया गया है। उसी परम्परा के अनुसार भारवि ने भी प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों पक्षों का वर्णन अनेक स्थानों पर किया है। आलम्बन रूप में प्रकृति के वर्णन की छटा चतुर्थ सर्ग में दिखायी देती है। यह वर्णन सरल तथा अलंकृत शैली में हैं, जिसको देखकर पाठक मुग्ध हो जाता है। इस पद्य में कवि ने वात्सल्य रस का स्वाभाविक वर्णन किया है। गाय सन्ध्या काल में अपने बछड़े को देखने के लिए कितनी उतावली है–

उपारताः पश्चिमरात्रिगोचरादपारयन्तः पतितुं जवेन गाम्।।[9]

प्रकृति के वर्णन में कवि जहाँ सजीव झाँकी प्रस्तुत करने में सक्षम प्रतीत होता है, वहाँ वह अर्थान्तरन्यास के प्रयोग से जीवन की वास्तविकता को भी प्रस्तुत करता है। कवि पके धानों का वर्णन करता हुआ कहता है कि नवीन गुणों के समान पुराने गुण भूल जाते हैं–

नवैर्गुणैः सम्प्रति संस्तवस्थिरं तिरोहितं प्रेम घनागमश्रियः।।[10]

खेत में बालियों के पक जाने पर धान के झुके हुए खेत ऐसे प्रतीत होते हैं मानों जल में खिले हुए हुए नीलकमल को सूँघने को झुके हुए हों–

विकासि वप्राम्भसि गन्धसूचितं नमन्ति निघ्रातुमिवासितोत्पलम्।।[11]

एक स्थान पर कवि ने सरोवर में स्नान करती हुई युवतियों का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया है। सरोवर में तैरती हुई युवतियों के काले तथा लम्बे–लम्बे बाल चारों ओर फैले हुए हैं तथा कुछ बाल युवतियों के मुख के चारों ओर लिपट जाते हैं, जिससे सुन्दरियों के मुख प्रदेश का चुम्बन लेते हुए भ्रमरों की भ्रांति उत्पन्न हो रही है।

तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः।
ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः।।[12]

प्रकृति के चित्रण में कवि कभी–कभी कितना भाव विभोर हो उठता है, "जैसे कोई मद्यप शराब पीकर धरती पर लोटने लगता है और उसका शरीर लाल हो जाता है वैसे ही दिनभर का प्यासा सूर्य अपनी किरण रूपी अंजलियों से कमलों के मकरन्द–रूपी मद्य का पान करने के कारण उन्मत्त–सा होकर धरती पर लोटते हुए लाल शरीर धारण कर लिया।"

अंशुपाणिभिरतीव पिपासुः पद्मजं मधु भृशं रसयित्वा।
क्षीबतामिव गतः क्षितिमेष्यंल्लोहितं वपुरुवाह पतङ्गः।।[13]

भारवि के वर्णन की स्वाभाविकता से प्रभावित होकर पश्चिमी विद्वान कीथ ने कहा है कि भारवि की वर्णन शक्ति में कोई सन्देह नहीं।

अलंकार– पूर्ववर्ती कवियों में कला–पक्ष की अपेक्षा भाव–पक्ष का प्राबल्य पाया जाता है, किन्तु अलंकृत शैली के कवियों में भारवि का प्रधान स्थान माना जाता है। भारवि ने अपने महाकाव्य में शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का प्रयोग समुचित स्थलों पर किया है। कवि के काव्य में अलंकारों की सुषमा बिखरी हुई दिखायी देती है। चित्रालंकार को कवि ने प्राधान्य दिया है। महाकाव्य का 15वाँ सर्ग इसी प्रकार के अलंकारों की झाँकी से भरा हुआ है।

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, समासोक्ति, निदर्शना, काव्यलिङ्ग, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक तथा श्लेष आदि प्रमुख हैं। अपने महाकाव्य में कालिदास के समान ही सुन्दर **उपमा** का प्रयोग किया है। अर्जुन कृषकों से युक्त पृथ्वी के समीप उसी तरह गया जैसे कोई नायक युवती प्रेयसी के समीप जाता है। शरद्काल में हंस उसी प्रकार कूजते हैं जैसे नायिका की मेखला खनखनाती है–

ततः स कूजत्कलहंसमेखलां सपाकसस्याहित पाण्डुतागुणाम्।
उपाससादोपजनं जनप्रियः प्रियामिवासादितयौवनां भुवम्।।[14]

अर्थान्तरन्यास अलंकार के भी अनेक उद्धरण कवि के काव्य में अनेक स्थलों पर बिखरे हुए प्रतीत होते हैं। निःसन्देह भारवि **अर्थान्तरन्यास** के प्रयोग में पूर्ण–दक्ष प्रतीत होते हैं।

सिंहासन पर आसीन दुर्योधन शक्तिसंचय करता हुआ युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों की शक्ति से भयभीत है। इसी आधार पर कवि ने **अर्थान्तरन्यास** अलंकार के माध्यम से कहा है कि महान् लोगों के साथ विरोध करने में निर्बलों को सदैव भय बना रहता है–**"अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता।"**

एक स्थान पर कवि **काव्यलिङ्ग अलंकार** में कहता है कि दुर्योधन ने जिस धरती को द्यूत के छल से प्राप्त किया है अब वही दुर्योधन प्राप्त साम्राज्य को अपने आडम्बरपूर्ण यश से विस्तृत कर रहा है तथा कीर्ति को विस्तृत करने के लिए भी अनेक उपाय कर रहा है–

दुरोदरछद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः।[15]

कवि **अर्थान्तरन्यास** के प्रयोग से कहता है कि ऐश्वर्य को विस्तृत करने वाले के लिए नीचों के संग की अपेक्षा महान् लोगों से विरोध करना भी अच्छा होता है–

समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।।[16]

दूत के मुख से कवि ने राजनीति का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत किया है। जबकि वनेचर (किरात) कहता है कि राजन्! स्वामी के द्वारा नियुक्त किसी भी अनुचर को गुप्तचर रूपी नेत्रों से देखने वाले स्वामी को कभी धोखा नहीं देना चाहिए, इसलिए मैं सत्य कहूँगा। यदि कुछ कटु प्रतीत हो तो क्षमा करें, क्योंकि हित करने वाली तथा प्रियवाणी दुर्लभ होती है–

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।।[17]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारवि की यह कृति उस रत्नाकर की तरह है, जिसके गर्भ में विशाल तथा विविध प्रकार के मणिमुक्ताओं तथा रत्नों की राशि बिखरी पड़ी है, हम जितने ही उसमें गोते लगायेंगे–अध्ययन में तन्मय होते जायेंगे– कवि की अथाह राशि से स्वयं को समृद्ध बना सकेंगे।

सन्दर्भ सूची–

1. किरातार्जुनीयम्, 14/5
2. नैषध 22/152
3. किरातार्जुनीयम्, 2/23
4. किरातार्जुनीयम्, 2/18
5. किरातार्जुनीयम्, 17/63
6. किरातार्जुनीयम्, 9/47
7. किरातार्जुनीयम्, 3/1
8. किरातार्जुनीयम्, 11/3
9. किरातार्जुनीयम्, 4/10
10. किरातार्जुनीयम्, 4/22
11. किरातार्जुनीयम्, 4/26
12. किरातार्जुनीयम्, 8/47
13. किरातार्जुनीयम्, 9/3
14. किरातार्जुनीयम्, 4/1
15. किरातार्जुनीयम्, 1/7
16. किरातार्जुनीयम्, 1/8
17. किरातार्जुनीयम्, 1/4